संदर्भ

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में शाला संस्कृति, पाठ्यचर्या एवं शिक्षक-बालक संबंधों, के प्रति विचारक असंतोष व्यक्त करते रहे हैं। टैगोर का यह लेख बच्चे की प्रकृति, शाला संस्कृति एवं शिक्षक की भूमिका के द्वन्द्व को तीव्रता से प्रकट करता है। टैगोर बताते हैं कि बच्चे के विकास में स्वतंत्रता का महत्त्वपूर्ण स्थान है और यह स्वतंत्रता स्थान एवं गतिविधियों के उपयोग तक ही सीमित नहीं है बल्कि मानवीय रिश्तों में भी होनी चाहिए। यह लेख बच्चे की प्रकृति एवं क्रियाशील मस्तिष्क को अनुशासन के नाम पर दबाए जाने का विरोध एवं शाला की समस्त प्रक्रियाओं में, बच्चे की सक्रिय भागीदारी के महत्त्व को रेखांकित करता है।

स्कूल मास्टर

❑ रवीन्द्रनाथ टैगोर

यदि पचास साल पहले किसी देवदूत ने आकर मुझसे कहा होता कि मुझे जापान के शिक्षकों की एक बैठक में शिक्षा पर अपने विचार रखने हैं तो मैं कल्पना में भी यह नहीं सोच सकता था और चौंक उठता। आप लोगों में से कुछ लोग शायद यह जानते होंगे कि तेरह वर्ष का होने के बाद मैंने शायद ही किसी शैक्षणिक संस्थान में कदम रखा हो। हां, कवि के रूप में ख्याति प्राप्त करने के बाद और व्याख्यान देने के लिए बुलाए जाने पर ऐसा जरूर हुआ है।

जब मैंने महसूस किया कि बच्चों के लिए एक स्कूल आरंभ करना मेरा दायित्व है, तब मेरे पास मुश्किल से ही शिक्षा का कोई अनुभव रहा हो। संभवत: यह मेरे लिए फायदे की चीज थी। क्योंकि शिक्षा का कोई गढ़ा-गढ़ाया, पका-पकाया सिद्धांत मेरे पास नहीं होने की वजह से मुझे प्रयोग और असफलता के रास्ते चलते हुए अपने अनुभवों से गुजरना पड़ा। जब मैं बच्चा था, तभी मुझे शिक्षा की खामियों का शिद्दत से अहसास करा दिया गया था। इस कारण स्कूल मुझ से दूर होता गया और जब मैं बड़ा हुआ तो मुझे ऐसी शिक्षण संस्था की स्थापना का निर्णय लेना पड़ा जहां वे खामियां न हों जिनसे बचपन में मैं त्रस्त था।

जब लगभग पांच वर्ष की उम्र में स्कूल जाने के लिए मुझ पर दबाव डाला गया था तो मेरा हृदय बगावत कर उठा था, ऐसी व्यवस्था के प्रति जिसमें जिंदगी के रंग लेशमात्र भी न थे, जीवन की चपलता न थी, जहां पढ़ाए जाने वाले पाठ का परिवेश से कोई संबंध न था। और जहां मुझे उस आनन्द लोक से निर्वासित कर लाया गया था, जिसमें मेरा जन्म हुआ था, जहां प्रकृति की हर चीज सुन्दर थी। यह सब इसलिए नहीं हुआ कि मैंने कोई अपराध किया था बल्कि इसलिए कि मैं मासूम था। मुझे लगता था मैं एक पिंजरे में बंद हूं जहां शिक्षा ऐसे दी जाती है जैसे चिड़ियों को पिंजरे के बाहर से भोजन। जबकि अभी मैं छोटा ही था, मेरा मन इस व्यवहार से उद्वेलित हो उठा था।

हमारी शिक्षा व्यवस्था यह स्वीकार करने से इंकार करती है कि बच्चे बच्चे हैं। बच्चों को सजा इसलिए दी जाती है कि वे बड़ों की तरह बर्ताव नहीं करते और बालोचित शोर मचाने की धृष्टता करते हैं। शिक्षक या तो यह जानते नहीं या मानने से इंकार करते हैं कि बचपना प्रकृति की निजी सौगात है और बच्चे दिमागी खलबली और उससे उपजी हरकतों के द्वारा नए तथ्यों और जानकारियों से रु-ब-रु होते हैं। इस तरह बच्चे स्कूल मास्टर और मूल-प्रकृति के बीच युद्ध का कारण बन जाते हैं।

स्कूल मास्टर की राय में बच्चों को शिक्षित करने का सबसे अच्छा तरीका है कि बच्चे के मस्तिष्क को एकाग्र (ध्यान केन्द्रित) किया जाए जबकि मूल-प्रकृति मस्तिष्क के छितराव (ध्यान के बिखराव) को इसका सबसे अच्छा तरीका मानती है। जब हम बच्चे थे तब दिमागी छितराव के चलते अनपेक्षित और आश्चर्यजनक ढंग से तथ्यों को संग्रहीत कर लिया करते थे। इस तरह के आश्चर्यों से हमें जो अचानक ज्ञान मिलता था, वह जीवन और दुनिया के तथ्यों के प्रति गहरा बोध करा देता था। तथ्य बच्चों को तरोताजा रूप में ही मिलने चाहिए ताकि उनसे उनके दिमाग में भरपूर हलचल पैदा हो सके। लेकिन ऐसी गतिविधि ही अपने आप में उस शिक्षक के लिए असहनीय होती थी जिसकी कक्षा में मुझे उपस्थित रहना पड़ता था। शिक्षक का आग्रह रहता था कि मैं चुपचाप बैठा रहूं

और मेरा मन हर पल बगावत कर रहा होता था, क्योंकि मूल-प्रकृति मुझे प्रोत्साहित कर रही होती थी कि मैं उस मनुष्य के उस आतंक को कभी स्वीकार न करूं।

बच्चों के जीवन में नितान्त उद्देश्यहीनता का होना एक अहम बात है। वयस्क होने पर जिन्दगी के लिए जरूरी कुछ उद्देश्यों का पुलिन्दा बनाने के बाद हम बाकी सब तथ्यों को इन उद्देश्यों की सीमा के बाहर ही कर देते हैं। हमारे मस्तिष्क का पूरा ध्यान इन उद्देश्यों पर ही केन्द्रित होता है और इस कारण हम अपने चारों ओर की अधिकांश चीजों को पूर्ण रूप से देखने में भी असमर्थ होते हैं; इस तरह हम अपने प्रयोजनशील मस्तिष्क के लिए कार्यक्षेत्र का एक संकुचित, संक्षिप्त-सा एक टुकड़ा तलाश लेते हैं, जिसके अन्तिम छोर तक पहुंचने के लिए एक संकरे रास्ते से गुजरना होता है। चूंकि बच्चे के पास जीवन जीने के लिए और कोई प्रतीतिजन्य उद्देश्य नहीं होता। वह अपनी चारों ओर की सभी चीजें देख सकता है, हर ध्वनि को ध्यान केन्द्रित करते हुए पूरी स्वतंत्रता के साथ सुन सकता है, बिना इस बात की परवाह किए कि कौनसी जानकारी उसे इकट्ठा करनी है, कौनसी नहीं।

बच्चे की बैचेनी की लगाम पूर्ण रूप से उसी के हाथ में होती है जो उसके मस्तिष्क को ज्ञान की दहलीज पर दस्तक देने के लिए प्रेरित करती है। जल की एक ऐसी धारा के समान जो छोटे-छोटे पत्थर के टुकड़ों के ऊपर से आगे बढ़ती है और अवरोधों से टकराते हुए और उनके बीच से गुजरते हुए और तेज गति पकड़ लेती है।

लेकिन जैसा मैं कह चुका हूं, स्कूल मास्टर का अपना ही एक उद्देश्य होता है। वह बच्चे के दिमाग को अपने गढ़े-गढ़ाए सिद्धांतों के अनुसार ढालना चाहता है और इसलिए बच्चे की दुनिया को उस हर चीज से जिसे वह अपने उद्देश्य की पूर्ति में बाधक मानता है छुटकारा दिलाना चाहता है। वह अपनी शिक्षा-योजना से उन सब चीजों को बाहर कर देता है जिनमें जिंदगी के रंगों की दुनिया होती है और गतिविधियां होती हैं ; इस तरह वह इस असहाय जीव को मूल-प्रकृति से छीन लेता है, अपने कैद खाने में बंद कर देता है, पूर्ण विश्वास के साथ कि बच्चे के मस्तिष्क को बेहतर बनाने का यही अचूक तरीका है। यह इसलिए होता है कि वह स्वयं वयस्क है और जब उसे अपने को शिक्षित करना होता है तो उस विषय का एक निश्चित कोर्स उसे करना होता है, उस सामग्री का अध्ययन करना होता है। अत: वह स्वाभाविक ही यह सोचता है कि बच्चे की शिक्षा के लिए भी यही तरीका बेहतर है जिसमें निर्धारित सामग्री के अलावा और कुछ शामिल न हो; बच्चे सामग्री के इन्हीं तथ्यों को जानें और इन्हें जानने का तरीका भी एक ही हो। शिक्षक यह नहीं समझता कि बहुत मायनों में बच्चों का दिमाग बड़ों के दिमाग से भिन्न ही नहीं होता बल्कि ठीक उसके उलट काम करता है।

यह फूल पर फल प्राप्त करने के मिशन को थोपने जैसी बात है। फूल को फल प्राप्त करने के लिए कुछ अवसरों की प्रतीक्षा करनी पड़ती है, उसे धूप के सेवन को और समीर को खुले दिल से स्वीकार करना होता है और उस अवसर की बाट जोहनी होती है कि कोई कीट मधु की तलाश में उसके ऊपर आकर बैठे। फूल आश्चर्यों से भरपूर दुनिया में जीता है लेकिन फल को अपने हृदय के कपाट बंद कर लेने होते हैं ताकि इसके बीज पक सकें। फल को एक भिन्न रास्ता अख्तियार करना होता है। फूल के लिए कीट का भाग्यवश आगमन एक बड़ी और महत्त्वपूर्ण घटना है जबकि फल के लिए उसका यह अतिक्रमण या बल प्रवेश घातक होता है। वयस्क मस्तिष्क फलरूपी मस्तिष्क की भांति है जिसकी फूल रूपी मस्तिष्क के प्रति कोई सहानुभूति नहीं होती। क्योंकि वह यह मानता है कि बाल मस्तिष्क को पूर्ण रूप से और सही मायने में तभी विकसित किया जा सकता है जब उसे प्रकृति के मूल स्पन्दनों और विधान से, बाहरी प्रभावों से और आश्चर्य भरी दुनिया से अलग कर दिया जाए। वयस्क मस्तिष्क के इस आतंक के दु:खद परिणाम बच्चे हर जगह भोग रहे हैं। जब मैं लगभग चालीस वर्ष का हुआ तो लगा कि जितना भी मेरे बस में हो मुझे इनमें से कुछ बच्चों को इन गलतियों से जो वयस्क अवस्था में पहुंचने के बाद बुद्धिमान लोग करते हैं, अवश्य बचाना चाहिए।

स्कूल की कक्षा में आश्चर्यों, अचरजों के लिए कोई गुंजाइश नहीं होती, सब कुछ एकरूपता लिए होता है जिसमें जीवंतता हो ही नहीं सकती। हर सुबह घड़ी के अनुसार ठीक समय पर बच्चों को स्कूल में उपस्थित होना होता है, निर्धारित कक्षा में जाना होता है, उसी विषय को उसी शिक्षक से सुनना होता है। घड़ी की सुई के अनुसार एक खास समय पर ही वह स्वतंत्र होता है। छुट्टियां कलेण्डर के अनुसार पहले से ही तय होती हैं और हर चीज यांत्रिक तरीके से ठीक समय पर और आदर्शनिष्ठ होती है।

यह स्थिति उन लोगों के लिए तो ठीक है जो अब बड़े हो गए हैं । व्यापारी के लिए यह लाभदायक होता है कि वह नियमित हो और समय पर रोजमर्रा के काम को पूरा करे। यह उसके लिए आनन्ददायक भी होता है जब उसे माह के अन्त में लाभ होने की उम्मीद होती है। उसे आत्म-संतोष होता है। जब इसके साथ कुछ मूल्य भी जुड़े होते हैं।

लेकिन बच्चे को इस तरह के लाभ की कोई अपेक्षा नहीं होती। दिन प्रति दिन, महीना दर महीना वह अपनी दिनचर्या पूरी करता है, बिना यह जानते हुए कि उसे जो निरर्थक पीड़ा मिल रही है इससे उसे क्या प्राप्त होने वाला है। वर्ष के अन्त में उसे परीक्षा की भयंकर कसौटी से गुजरना पड़ता है। वह अन्याय की घड़ी होती है जब मेहनती छात्रों को भी पूर्णांक प्राप्त नहीं होते और उन्हें उनकी मेहनत के फल से भी वंचित कर दिया जाता है। यह एक क्रूर गुलामी है जिसमें बाल मस्तिष्क को अभ्यस्त किया जाता है। यह नैतिक और मनोबल को क्षीण करता है । यह पूर्ण आज्ञाकारिता की ऐसी मिसाल है जिसमें वैयक्तिक जिम्मेदारी और स्वतंत्र मस्तिष्क की पहल के भावबोध को कीमत चुकानी पड़ती है।

ऐसा हम क्यों करते हें ? इसका क्या महत्त्व है ? सिर्फ यह कि हम परेशानियों से बचने के लिए बच्चों को उस समय पिंजरे में कैद कर देते हैं, जब प्रकृति से मिले उनके पंख उड़ने के लिए बेताब होते हैं। इसके साथ ही उनके मस्तिष्क में आजादी की प्रबल इच्छा और जोखिम उठाने की भावना को भी हम समाप्त कर देते हैं जो इस दुनिया में हम सब साथ लेकर आते हैं और जो प्रतिदिन नए अनुभवों की खोज में रहती है। यह स्वतंत्रता मस्तिष्क के बौद्धिक विकास और बच्चों के मधुर स्वभाव के लिए नितांत आवश्यक है।

लेकिन इस प्रकार की कोई योजना इसलिए सफल नहीं हो पाती क्योंकि पुलिस आ जाती है और हमारी अन्तर्रात्मा और विवेक का स्थान ले लेती है। तब हम बन्दीगृह के लिए कैदियों को तैयार करने लगते हैं और पागलखाने के लिए मरीजों को। हम बच्चे के दिमाग को सीमित दायरे में बांध देते हैं, जब हम उनकी तथ्यों को एकत्रित करने की आन्तरिक शक्ति और ऊर्जा का दमन करते हैं; जब हम उनकी शरारतों का विश्लेषण कर उन्हें सामान्यीकृत कर देते हैं। शरारत का आन्तरिक स्रोत सबसे बड़ा तोहफा है जिसे बच्चा अपने साथ लाता है।

जब मैंने अपना स्कूल शुरू किया था तो सौभाग्यवश पड़ौस के सभी लेकिन देश के अन्य भागों से भी शरारती लड़के मेरे पास आ गए थे। चूंकि सामान्य बच्चों के अभिभावक उन्हें आवासीय विद्यालय में भेजना पसंद नहीं करते थे, इसलिए सर्वाधिक उदात्त बच्चों का एक दिलचस्प समूह मेरे पास इकट्ठा हो गया था।

ये शरारती बच्चे कौन थे ? ये थे वे बच्चे जो ऐसी ऊर्जा से लबालब भरे थे (जो उन्हें प्रकृति की विशेष देन थी), जिसे सम्माननीय समाज में प्रचलित अनुशासन की तमाम मान्यताओं के बल पर भी शांत नहीं किया जा सकता था, पूरी तरह से क्रियाशून्य नहीं बनाया जा सकता था। इसलिए इन बच्चों को खुराफाती मान लिया गया था।

इनके अभिभावकों ने मुझसे बार-बार कहा कि मैं उन्हें दण्ड दूं - तब भी जब उन्होंने कोई गलती की ही न हो। उनका विश्वास था कि सजा देना अपने आप में एक कड़वी दवा है, उसी प्रकार जैसे यकृत को ठीक करने के लिए दवा दी जाती है। इस दवा की नियमित खुराक वे शरारती बच्चों के नैतिक स्वास्थ्य के लिए अच्छी व कारगर मानते थे।

पर हमें मालूम होना चाहिए कि औदात्य और ऊर्जा बच्चों के लिए प्रकृति का सर्वोत्तम उपहार होते हैं और हमारे संभ्रात घरों की सम्मान संहिता और औदात्य के बीच हमेशा ही लड़ाई रहती है। इस शाश्वत लड़ाई ने तमाम तरह की विसंगतियों और विकृत स्थितियों को जन्म दिया है, क्योंकि उनमें औदात्य का जो एक प्रकृति सुलभ अच्छा गुण है, उसे अप्राकृतिक तरीके से दबाने का प्रयास किया गया।

उद्दण्ड लड़कों को मैंने न तो सजा दी और न ही प्रताड़ित किया। हममें से अधिकांश लोग सोचते हैं कि शरारती लड़कों को सजा देने के लिए उनकी स्वतंत्रता पर लगाम कसना जरूरी है। लेकिन स्वतंत्रता पर रोक लगाना प्रकृति के नियमों के विरुद्ध है। जब मस्तिष्क और जीवनचर्या को पूरी स्वतंत्रता मिलती है, तभी वे स्वस्थ रहते हैं। अत: मैंने आजादी आधारित चिकित्सा पद्धति- यदि इसे यह नाम दिया जा सके- अपनाई। लड़कों को दौड़ने-भागने, दुरुह पेड़ों पर चढ़ने और गिरकर चोट लगने पर दु:ख का भागी बनने की छूट थी। वे बारिश में भीग जाते थे और तालाब में तैरते थे। प्रकृति ने अपने तरीके से इनका उपचार किया और जो लड़के खराब समझे जाते थे जब वे घर लौटे तो उनमें आए भारी बदलाव को देख उनके अभिभावक दंग रह गए।

स्वतंत्रता मात्र स्थान और गतिविधियों के बेरोकटोक उपयोग में ही निहित नहीं होती। यह खुले मानवीय रिश्तों में भी होती है जो कि बच्चों के लिए आवश्यक होते हैं। यह स्वतंत्रता अपनी मां के साथ उनके रिश्ते में उम्र में काफी बड़ी होने के बावजूद भी होती है। वास्तव में वह अपने मानवीय प्रेम के कारण हृदयों के परस्पर मिलने में कोई रुकावट महसूस नहीं करती और वह अपने बच्चों की लगभग संगी-साथी ही बन जाती है। मूल प्रकृति से प्रेम का मिला उपहार बच्चों के लिए नितांत आवश्यक होता है क्योंकि यह प्रेम ही स्वतंत्रता है जो बच्चे अपनी मां से दूर इस संस्था में आते हैं उन्हें अपने शिक्षकों के साथ बने रिश्तों में भी यह स्वतंत्रता होनी चाहिए।

मैं अपने छात्रों के साथ खेलता था और उनकी जिन्दगी में पूरी तरह शामिल था। जब उनकी संख्या कम थी, मैं ही एक मात्र शिक्षक था लेकिन वे आयु में बहुत बड़े अन्तर के बावजूद मुझसे डरते नहीं थे। यहां उन्हें घर जैसा लगता था। घर जैसा कब लगता

है ? जब लड़का अपने को भाइयों और परिवार के बीच महसूस करे और उसके हृदय को अभिव्यक्ति का पूर्ण अवसर मिले।

अधिकांश शिक्षक यह नहीं जानते कि बच्चों को पढ़ाने के लिए स्वयं को भी बच्चा बनना पड़ता है। दुर्भाग्यवश वे उस भाव से ग्रस्त होते हैं कि वे बड़े हैं और विद्वान हैं। इसलिए वे बच्चों के मन में बड़प्पन और विद्वता के तौर तरीके लादना चाहते हैं जिससे बच्चों का मन अनावश्यक रूप से उद्विग्न रहता है।

मैं उन्हें यह अहसास कराने का प्रयत्न करता हूं कि हमारी उम्र में फर्क होने के बावजूद हम एक ही पथ के राही हैं - वृद्ध और युवा। हम एक ही लक्ष्य के लिए काम कर रहे हैं। ऐसा नहीं है कि हम शिक्षकों ने वह लक्ष्य हासिल कर लिया है और वे जो अभी पढ़ रहे हैं हमसे बहुत अधिक फासले पर हैं। इस फासले की अधिकता से भय उत्पन्न होता है। बच्चों के दिमाग पर इसका असर कभी नहीं होने देना चाहिए।

हमारी शिक्षण संस्थाओं में जीवंतता नहीं है, वे विकासमान नहीं हैं जैसे कि और कुछ करना बाकी न रह गया हो, सब पूरा हो चुका है। लोहे की सलाखों से इन्हें दक्षतापूर्वक बनाया जाता है जिनके अन्दर बच्चे रहते और पढ़ते हैं। पर मैंने चाहा है कि बच्चे यहां महसूस करें कि यह उनका पिंजरा नहीं है बल्कि घोंसला है यानी कि इसके बनाने में उन्हें स्वयं भी हिस्सा लेना पड़ेगा। शिक्षा की इमारत खड़ी करना हमारा साझा और सृजनात्मक प्रयास होना चाहिए, सिर्फ शिक्षकों का नहीं, व्यवस्थापकों का नहीं, बल्कि छात्रों का भी। बच्चे अपनी जिन्दगी का कुछ हिस्सा इसके निर्माण में भी दें। और महसूस करें कि वे ऐसी दुनिया में रह रहे हैं जिसका निर्माण उन्होंने किया है, जो उनकी है और सबसे अच्छी स्वतंत्रता भी यही है जो इंसान चाहता है।

यदि हम एक ऐसी व्यवस्था में रहते हैं जो हमारी अपनी नहीं है जिसे किसी दूसरे ने बनाया है भले ही बनाने वाला कितना भी बुद्धिमान हो, असली स्वतंत्रता हम उसमें अनुभव नहीं कर पाएंगे। क्योंकि सृजनात्मक मस्तिष्क की हमेशा चाह रहती है कि अपनी दुनिया का निर्माण वह स्वयं करे। संतोष की यह अनुभूति मैं अपने छात्रों को देना चाहता था और यह भी चाहता था कि जहां तक संभव हो उन्हें अपने काम-काज को स्वयं संभालने की स्वतंत्रता हो। मैंने हमेशा उन्हें यह अहसास कराने की कोशिश की कि यह स्कूल मेरा नहीं, उनका है; स्कूल अभी पूरा नहीं हुआ है, अभी यह उनके सहयोग से पूरा होने की प्रतीक्षा कर रहा है; यहां उन्हें शिक्षकों के साथ-साथ कार्य करते हुए सीखना है। और मुझे लगता है कि मेरी संस्था के छात्रों ने मेरे विचार को समझा और चूंकि उन्होंने समझ लिया था, यही वजह है कि इस संस्था के प्रति उनमें गहरा प्रेम पनपा। यहां से जाने के बाद भी जब भी उन्हें समय और अवसर मिलता है वे यहां अवश्य आते हैं।

इसके अतिरिक्त मुझे इन महत्त्वपूर्ण तथ्यों पर भी विचार करना पड़ा : चिड़िया, जानवर और इंसान एक क्रियाशील मस्तिष्क के साथ पैदा होते हैं जो अपनी स्वतंत्रता की खोज में रहते हैं। यह क्रियाशीलता जो वे अपने साथ लाते हैं आत्म शिक्षण के लिए स्वतंत्र दुनिया तलाशती है। इसके अलावा हृदय की क्रियाशीलता या गतिविधि भी होती है जो अपनी स्वतंत्रता के लिए सहानुभूति के सहज रिश्तों को खोजती है। फिर आत्मा की गतिविधि भी होती है और वो भी अपने लिए एक स्वतंत्र संसार के सृजन के अवसर ढूंढ़ती है। बच्चों को शिक्षित करते समय इन सब बातों को ध्यान में रखना आवश्यक होता है।

बच्चों के क्रियाशील मस्तिष्क को कभी भी बाहर से थोपी गई चीजों और दबावों के कारण शिथिल व निस्तेज न होने दें; सक्रिय हृदय की गतिविधियों को कृत्रिम संबंधों की असहिष्णुता के कारण पैदा हुए अवरोधों की वजह से सीमाओं में न बंधने दें और सक्रिय एवं सृजनात्मक चाह (इच्छाशक्ति) को अवसरों के अभाव में नितांत निष्क्रिय स्थिति में कभी न पहुंचने दें। इन तीनों प्रकार की स्वतंत्रताओं को मैंने अपनी संस्था में जगह दी - मस्तिष्क की स्वतंत्रता, हृदय की स्वतंत्रता और इच्छा-तत्त्व की स्वतंत्रता।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि स्वतंत्रता के द्वारा ही मनुष्य का पूर्ण विकास हो सकता है। जब हम स्वतंत्रता को सीमित कर देते हैं तो उसका मतलब होता है कि हमारा अपना कोई मकसद है जिसे हम बच्चों पर आरोपित करना चाहते हैं और तब प्रकृति का जो अपना उद्देश्य है- बच्चों को पूर्ण रूप से विकसित होने के अवसर मिलना- वह हमारे दिमाग में नहीं रहता। जब हम पेड़ से अधिक पत्ते प्राप्त करना चाहते हैं तब हम उसे 'प्रशिक्षित' करने के लिए उसकी उस ऊर्जा को जो फूल और फल बनने में लगती है दबा देते हैं ताकि उसकी सम्पूर्ण ऊर्जा का पत्तियों के बनने में उपयोग हो सके। लेकिन इससे पेड़ के प्राकृतिक जीवन में अवरोध पैदा होता है और उसमें अधूरापन आ जाता है।

यदि हमारी शिक्षण संस्थाओं के कुछ घोषित उद्देश्य हैं, जैसे कि सभी बच्चों को देशभक्त, व्यावहारिक इंसान, सैनिक या बैंककर्मी बनाना तो फिर यह जरूरी हो जाता है कि उन्हें आज्ञापालन और अनुशासन की यांत्रिक कवायद कराते हुए शिक्षित किया जाए, लेकिन इसमें न तो बहुआयामी जीवन की सम्पूर्णता होगी और न ही मानवीय मूल्यों की परिपूर्णता।

जो भी यह जानता है कि प्रकृति का उद्देश्य बच्चों को परिपूर्ण मानव बनाना है- हर दृष्टि से परिपूर्ण, मानसिक रूप से भी और

आध्यात्मिक रूप से भी- तब वह बच्चों को स्वतंत्रता के माहौल में ही विकसित होने का अवसर देगा। दुर्भाग्यवश हममें इंसानी खामियां हैं और ताकत से हमारा प्यार का रिश्ता है; कुछ शिक्षकों, अधिकांशत: स्कूल मास्टरों को ताकत के प्रति मोह और प्यार विरासत में मिलता है; इन शिक्षकों को ताकत के प्रयोग के लिए तैयार जमीन इन असहाय बच्चों के रूप में मिलती है।

मैंने यह देखा है कि जो शिक्षक बच्चों को अनुशासित रखने में गर्व महसूस करते हैं वे जन्मजात अत्याचारी होते हैं और ऐसे बहुत लोग हैं। विरासत में मिली अत्याचार की वासना को तृप्त करने के लिए वे इन असहाय बच्चों को काम में लेते हैं और उन पर अपनी आचार संहिता थोप देते हैं। वे बच्चों के दिमाग को कुचलने का प्रयास ऐसे-ऐसे काम बता कर करते हैं जो उबाऊ और यांत्रिक होते हैं और बुद्धि सम्पन्न और ताजा दिमाग को खत्म कर देते हैं। वे तमाम प्रकार की यातनाएं देते हैं क्योंकि ये अत्याचारी इस ख्याल से ही आनन्दित हो उठते हैं। आनन्द प्राप्ति का इतना बड़ा अवसर स्कूल की सीमा के बाहर मिलने की वे कभी आशा भी नहीं कर सकते।

यह मात्र छात्रों पर अत्याचार और उनकी दयनीय स्थित का मसला नहीं है बल्कि मानव संसार के लिए एक बड़े अनिष्ट का कारण भी है - इन लोगों ने स्कूल मास्टर का व्यवसाय चुना जबकि इनके लिए जल्लाद या जेलर का या अन्य कोई व्यवसाय उपयुक्त होता। इंसान के बच्चों को पाल पोसकर बड़ा करने के लिए अत्याधिक सहानुभूति, समझ और कल्पना की जरूरत होती है। उन्हें किसी प्रदर्शन या प्रदर्शनी के उद्देश्य से तैयार अथवा प्रशिक्षित नहीं किया जाता, वे नाच दिखाने वाले रीछ या बन्दर नहीं हैं। वे इंसान हैं जिनके पास समृद्ध मस्तिष्क और अन्तर्रात्मा है। और यह काम ऐसे लोगों पर कभी नहीं छोड़ा जाना चाहिए जो कल्पनाहीन हैं और जिनमें बच्चों के प्रति कोई दिली हमदर्दी नहीं है। ऐसा व्यक्ति जिसके अन्तस में बच्चा निवास नहीं करता, जिसे वह खो चुका है, बच्चों को शिक्षित करने के महान कार्य के लिए उपयुक्त नहीं है।

दुर्भाग्यवश जिस भाषा का मैं प्रयोग कर रहा हूं वह न मेरी है और न आपकी और इसलिए समय अधिक लग रहा है। इस बाधा के कारण मैं शिक्षा के तौर-तरीकों और व्यवस्था के बारे में अपने विचार आपके सामने पूरे विस्तार से नहीं रख सकता। शिक्षा के उन सामान्य सिद्धांतों को मैंने आपके सामने प्रस्तुत किया है जिन्हें मैं मानता हूं कि वे सही हैं और वे हैं - जिस प्रकार ईश्वर अपनी बनाई चीजों (सृष्टि) में अपनी स्वतंत्रता को अनुभव करता है और उसे आत्म-संतोष होता है, इंसानों को भी अपनी दुनिया का निर्माण करना होता है और तब उन्हें भी इस प्रकार की स्वतंत्रता की अनुभूति होती है। इस हेतु उन्हें सैनिक बनाने के लिए, बैंक में बाबू बनने के लिए या व्यापारी बनाने के लिए प्रशिक्षण देने के बजाए उनमें अपनी दुनिया स्वयं निर्मित करने, अपनी किस्मत खुद बनाने की काबलियत पैदा करनी चाहिए। और इसके लिए जरूरी है कि उनकी सभी क्षमताएं पूर्ण रूप से स्वतंत्र वातावरण में विकसित की जाएं।

हम जो सिर्फ किताबी शिक्षा में विश्वास करते हैं, बच्चों की अपने कार्यों, क्रियाकलापों से, प्रत्यक्ष अवलोकन से स्वयं सीखने की, स्वयं अपने को शिक्षित करने की नैसर्गिक देन को भोंथरा कर विकृत कर देते हैं। हम उन पर दबाव डालते हैं और उन्हें मजबूर करते हैं कि पुस्तक पाठ को मानें। ऐसा करके हम उनकी स्वयं की दुनिया (अर्थात् अर्थ ग्रहण और व्याख्या) को निर्मित करने की सृजनात्मक क्षमता को नष्ट कर देते हैं। अधिकांश बच्चों के साथ यही हो रहा है। उन पर हम अपने विचार तो थोपते ही हैं पर ऐसे भी जो हमारे अपने नहीं होते दूसरों से लिए होते हैं।

ईश्वर का मन्तव्य ही रहा है कि अपनी दुनिया का निर्माण हम करें। ऐसा हम देखते भी हैं जब पाते हैं कि बचपन में हमें एक मात्र आनन्द उन खेलों में आता था जब बेकार-सी चीजों से खेलते हुए अपनी कल्पना को अभिव्यक्ति देते थे। बचपन में यही हमारे लिए अधिक मूल्यवान होता है बजाए स्वर्ण या बैंक नोटों या अन्य किसी वस्तु के। यही बात हर व्यक्ति के लिए भी सही है। वैयक्तिक सृजनात्मक क्षमता को हम इसलिए भूल जाते हैं क्योंकि हमारा दिमाग ऐसे कृत्रिम मूल्यों से संक्रमित और ग्रस्त हो जाता है जो अन्य लोगों द्वारा निर्धारित कर समाज में प्रचलन में लाए गए हैं जैसे कि रहन-सहन का एक खास तरीका, सम्माननीयता प्राप्त करने के विशिष्ट मानदण्ड और शैली। हम दबाव में इन चीजों को जबरन स्वीकार करते हैं और ईश्वर प्रदत्त सर्वाधिक मूल्यवान भेंट की - सृजन की क्षमता जो ईश्वर से ही हमें प्राप्त होती है - बलि चढ़ा देते हैं।

ईश्वर सर्जक है और हम स्त्री-पुरुष चूंकि उसी के बच्चे हैं, इसलिए हमें भी सृजनशील होना चाहिए, लेकिन ऐसा कहना तो उन सब लोगों के उद्देश्यों के विरुद्ध होगा जो बच्चों को स्वयं के द्वारा तैयार किए गए सांचों में ढालना चाहते हैं - अत्याचारी, स्कूल मास्टर, शिक्षा-प्रशासन से जुड़े लोग और सरकारें। ◆

अनुवाद - सुरेन्द्र कुशवाह